डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/068/2021-23
REG. NO. RAJHIN/2002/14707

उत्तमा वृत्तिस्तु कृषिकर्मैव

चोखी खेती

मई 2022 ई-संस्करण

प्राकृतिक खेती - मात्र प्राकृतिक आदानों का ही उपयोग हो

प्रो. (डॉ.) रक्षपाल सिंह
कुलपति, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

प्राकृतिक खेती, रसायनमुक्त खेती है इसमें मात्र प्राकृतिक आदानों का ही उपयोग किया जाता है तथा इसमें किसी भी सिंथेटिक रासायनिक आदानों का उपयोग नहीं किया जाता है। प्राकृतिक खेती रसायनमुक्त व पशुधन आधारित है। यह एक प्रकार से फसलों, पेड़ों और पशुधन को एकीकृत करती है। प्राकृतिक खेती से मिट्टी की उर्वरता और पर्यावरणीय स्वास्थ्य की बहाली जैसे कई लाभ है। प्राकृतिक खेती प्राचीन पद्धति है जिससे प्राकृतिक संतुलन स्थापित होने के साथ साथ कम लागत होने से किसानों को लाभ मिलता है। भारत में प्राकृतिक खेती के कई स्वदेशी रूप हैं। भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति (बीपीकेपी) के रूप में केन्द्र प्रायोजित योजना परम्परागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) के अंतर्गत बढ़ावा दिया जाता है। बीपीकेपी का उद्देश्य पारंपरिक स्वदेशी प्रथाओं को बढ़ावा देना है दृ जो बड़े पैमाने पर ऑन–फार्म बायोमास रीसाइक्लिंग पर आधारित हैं, जिसमें मल्चिंग और गाय के गोबर के उपयोग और मूत्र के मिश्रण को तैयार करने पर जोर दिया गया है। वर्तमान में, बीपीकेपी को आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, केरल, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, ओडिशा, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु सहित देश के आठ राज्यों द्वारा अपनाया जाता है।

नीति आयोग भारत सरकार द्वारा 25 अप्रेल, 2022 को 'नवोन्वेषी कृषि' विषय पर राष्ट्रीय कार्यशाला आयोजित की गई। कार्यशाला में प्राकृतिक कृषि पद्धतियों के सिद्धांतों व प्रक्रियाओं को समझने की आवश्यकता पर चर्चा हुई। आजकल अच्छे स्वास्थ्य, पौष्टिक भोजन और रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रति जागरूकता में वृद्धि देखी जा सकती है। कोरोना महामारी के दौरान बेहतर पोषण रोग प्रतिरोधकता के बारे में काफी प्रचार प्रसार हुआ। नीति आयोग भारत सरकार, पारंपरिक खेती के तौर तरीकों को उपयोग में लिए जाने की दिशा में प्रयासरत है और इसको बढ़ावा देने की दिशा में देशव्यापी अभियान शुरू किया गया है। कृषि संबंधी पाठ्यक्रमों में भी प्राकृतिक खेती का विषय शामिल करने को लेकर बनाई गई समिति ने भी काम शुरू कर दिया है। पर्यावरण के अनुकूल पारंपरिक कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देने के लिए नीति आयोग देश में अब तक कवर किए गए चार लाख हेक्टेयर से अधिक 'प्राकृतिक खेती' के तहत क्षेत्रों को बढ़ाने के लिए एक रोडमैप तैयार करेगा। यहाँ गुजरात के माननीय राज्यपाल देवव्रतजी की बात का उल्लेख करना चाहूँगा। प्राकृतिक खेती में पौधे को पानी नहीं, बल्कि नमी चाहिए होती है। इस पद्धति में पहले साल लगभग 50

प्रतिशत पानी कम लगता है और तीसरे साल तक लगभग सत्तर प्रतिशत पानी की बचत होने लगती है। इस विधा में जीवाणु काफी संख्या में बढ़ते हैं, जो खेती की जान होती है। मृदा में कार्बन की मात्रा भी बढ़ती है, जो मृदा स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है। प्राकृतिक खेती में तीन फसल लेने का प्रयोग भी सफल हुआ है, वहीं पानी की कमी वाले क्षेत्रों में भी यह पद्धति सफल हो रही है।

हमारे राजस्थान राज्य की बात करें तो पाएंगे कि विगत कुछ वर्षों में ''खेती में जान तो सशक्त किसान'' की सोच रखते हुए कृषि लागत को कम करने के लिये जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग को बढ़ावा दिया जा रहा है। ''राज किसान जैविक एप्प'' प्रारम्भ किया गया है, जिस पर जैविक उत्पाद के क्रेता एवं विक्रेताओं की जानकारी उपलब्ध है। पायलट आधार पर दुर्गापुरा, जयपुर में जैविक हाट कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है, जिसमें जयपुर जिले के आस–पास के क्षेत्रों के 12 कृषकों द्वारा स्वयं उत्पादित जैविक उत्पाद विक्रय किये जाते हैं। योजना के माध्यम से प्राकृतिक खेती करने के इच्छुक कृषकों को प्राकृतिक खेती से होने वाले लाभ, रासायनिक कीटनाशक व उर्वरक उपयोग से होने वाले नुकसान, कम लागत से खेती करने की विधि, स्थानीय स्तर पर जैव उत्पाद यथा जीवामृत, बीजामृत, नीमास्त्र, घनामृत आदि तैयार कर उपयोग में लेने की विधि की प्रायोगिक जानकारी दी गई है, जिसका उपयोग कृषकों द्वारा खेती में लागत कम करने एवं उच्च गुणवत्ता के उत्पाद पैदा करने में किया जा रहा है।

प्राकृतिक खेती के विस्तार से देश की केंद्र व राज्य सरकारों को खाद सब्सिडी से भी राहत मिलेगी। धरती को बंजर होने से बचाने, पानी की बचत करने व पशुधन के उपयोग की दृष्टि से हमें प्राकृतिक खेती को अपनाना ही होगा और इसके लिए जो देशव्यापी अभियान शुरू किया गया है उसमे जरूर सफल होंगे।

नीति आयोग द्वारा विज्ञान भवन नई दिल्ली में 'नवोन्वेषी कृषि' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय कार्यशाला में माननीय कुलपति प्रो आर पी सिंह महोदय ने भाग लिया। नीति आयोग, पारंपरिक खेती के तौर तरीकों को उपयोग में लिए जाने की दिशा में प्रयासरत है। प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए देशव्यापी अभियान शुरू किया गया है। कृषि संबंधी पाठ्यक्रमों में भी प्राकृतिक खेती का विषय शामिल करने को लेकर बनाई गई समिति ने भी काम शुरू कर दिया है। राष्ट्रीय स्तर की कार्यशाला में गुजरात के राज्यपाल आचार्य देवव्रत, केंद्रीय कृषि और किसान कल्याण मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर, केंद्रीय मत्स्य पालन, तकनीकी सत्रों में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ, मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान, आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री वाई.एस. जगन मोहन रेड्डी व उत्तराखंड के मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी, नीति आयोग के उपाध्यक्ष डॉ. राजीव कुमार, डॉ अशोक दलवई सहित देश प्रमुख कृषि वैज्ञानिक और कृषि विशेषज्ञों उपस्थित रहे।

नीम का जैविक कीट नियंत्रण में उपयोग

महेन्द्रा[1] एवं डॉ. वी.स. आचार्य[2]

नीम का पेड़, वनस्पति जगत का इकलौता ऐसा प्राणी है जिसमें मानव के साथ–साथ पशुओं और पेड़–पौधों के विभिन्न रोगों तथा हानिकारक कीट–पतंगों से उपचार की अद्भुत क्षमता है। नीम पर आधारित 125 से ज़्यादा रसायनों को अब तक खोजा जा चुका है। आधुनिक वैज्ञानिक शोधों ने बताया है कि नीम में फसलों के विभिन्न रोगों के उपचार के अलावा हानिकारक कीट–पतंगों पर भी नियंत्रण की क्षमता है। आधुनिक रासायनिक खेती की वजह से जहाँ मनुष्यों और पशुओं के स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर गम्भीर खतरा बढ़ा है वहीं नीम के प्रयोग से जहरीले कीटनाशकों से मुक्ति पाने में सफलता मिली है। इसीलिए जैविक और प्राकृतिक खेती में नीम के इस्तेमाल को बढ़ाने पर ख़ासा ज़ोर दिया जाता है।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों और चिकित्सा शास्त्रों से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक खोजों ने भी नीम के अद्भुत औषधीय गुणों को साबित किया है। परम्परागत तौर पर खेती–बाड़ी के मामले में नीम का मुख्य इस्तेमाल अन्न भंडारण और पशुओं के परजीवी कीड़ों के नियंत्रण तक सीमित रहा है। नीम में जीवाणुरोधी, कवकरोधी, विषाणुरोधी, कृमिनाशक, कफ़शामक, गर्भ–निरोधक, मूत्र–और पित्त सम्बन्धी विकारों को ख़त्म करने वाला, शीतलकारी, रक्तशोधक, ज्वरनाशक, यकृत उत्तेजक, मधुमेह नाशक, दन्त और रोग निवारक जैसे एक से बढ़कर एक गुण पाये जाते हैं। नीम का प्रभाव एड्स जैसे असाध्य रोग के विषाणुओं पर भी देखा गया है। इन्हीं विलक्षण गुणों के कारण नीम को 'सर्व–रोग–निवारक', 'नीम–हक़ीम' और 'एक नीम, सौ हक़ीम' जैसी उपमाएँ मिली हैं और ये भारतीय जीवनशैली का अभिन्न अंग बना हुआ है।

जैविक खेती में नीम की उपयोगिता

जैविक खेती के लिहाज़ से नीम जैसी उपयोगी कोई अन्य वनस्पति नहीं है। इसीलिए जोधपुर स्थित ICAR & CAZRI (Central Arid Zone Research Institute या केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान) और मेरठ स्थित ICAR & IIFSR (Indian Institute of Farming Systems Research या भारतीय कृषि प्रणाली अनुसन्धान संस्थान) के वैज्ञानिकों ने जैविक खेती में इस्तेमाल के लिए नीम से बनने वाले विभिन्न उत्पादों को बनाने और उसके इस्तेमाल की प्रक्रिया का मानकीकरण किया है। इसे नीम की पत्तियों और इसके बीजों से बने उत्पादों के रूप में बाँटा गया है।

जैविक या प्राकृतिक में रासायनिक खाद और कीटनाशकों का प्रयोग वर्जित है। इसीलिए मिट्टी में मुख्य तौर पर नाइट्रोजन जैसे पोषक तत्व की उपलब्धता और रासायनिक दवाईयों के बग़ैर बीमारियों की रोकथाम बड़ी चुनौती बन जाती है। लेकिन नीम का पेड़ इन चुनौतियों से निपटने में बेहद मददगार साबित होता है और जैविक खेती का एक ठोस आधार बनता है। नीम की पत्तियों और खली से बनी खाद को जहाँ मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिए होता है, वहीं इसकी पत्तियों, बीजों, तेल और खली का उपयोग कीट–पतंगों से रोकथाम में किया जाता है।

क) नीम की पत्तियों से बने उत्पाद

1.नीम की पत्तियों का जूसः नीम की पत्तियों से 'नीम–पर्ण–स्वरस' यानी जूस बनाने के लिए एक किलोग्राम नीम की पत्तियों को 5 लीटर पानी में रात भर भिगोना है। अगली सुबह भीगी पत्तियों को इसी पानी में कूट–पीसकर परस्पर मिला देने से नीम की पत्तियों का जूस बन जाता है। इसे महीन कपड़े से छान लें। सूँड़ी जैसे कीड़ों और हानिकारक कीट–पतंगों के उपचार के लिए प्रति एकड़ 32 किलोग्राम नीम की पत्तियों

1विद्यावाचस्पति शोधार्थी, 2 सह– आचार्य
कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय,स्वामी केशवानंद कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

और 160 लीटर पानी से तैयार जूस की ज़रूरत पड़ेगी। इसके हरेक छिड़काव से पहले यदि जूस में खादी वाले साबुन का चूर्ण भी मिला दें तो दवाई और कारगर बन जाएगी।

2.नीम-गोमूत्र अर्क: इसे बनाने के लिए 5 किग्रा नीम की पत्तियों को उपयुक्त पानी में पीसें। इस पेस्ट को 5 लीटर गोमूत्र और 2 किग्रा गाय के गोबर में मिलाकर एक घोल बनाएँ। अगले 24 घंटे तक इस घोल को कुछेक घंटे के अन्तराल पर किसी डंडे से हिलाते रहें। फिर घोल को महीन कपड़े से छान लें और इसमें 100 लीटर पानी मिला लें। इतनी मात्रा एक एकड़ में छिड़काव के लिए ज़रूरी होगी। इसे खड़ी फसल की पत्तियों का रस चूसने वाले और 'मिली बग' जैसे कीड़ों पर बहुत प्रभावी पाया गया है।

3.बेसरम-मिर्च-लहसुन-नीम अर्क: इस अर्क को बनाने के लिए 1 किग्रा बेसरम (बेहया) पेड़ की पत्तियाँ, 500 ग्राम तीखी हरी मिर्च, 500 ग्राम लहसुन और 5 किग्रा नीम की पत्तियों को पीसकर इसे 10 लीटर गोमूत्र मिलाकर इस घोल को इतना उबाले कि इसकी मात्रा घटकर आधा रह जाए। फिर इस अर्क को महीन कपड़े से छानकर बोतलों में भरकर रखें। इस अर्क को पत्ती–मोड़क, तना, फली और फल वेधक कीटों के ऊपर बेहद प्रभावी पाया गया है। एक एकड़ के खेत में इस अर्क की 3 लीटर मात्रा को 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

4.दसपर्णी अर्क : इसे बनाने के लिए 5 किग्रा नीम की पत्तियाँ, 2–2 किग्रा गिलोय, अनानास, लाल कनेर, मदार और करंज की पत्तियों के अलावा 2 किग्रा हरी मिर्च और 250 ग्राम लहसुन का पेस्ट या चटनी तैयार करें। फिर इसमें 3 किग्रा गाय का गोबर और 5 लीटर गोमूत्र और 200 लीटर पानी मिलाकर घोल को एक महीने तक सड़ने दें। इस दौरान रोज़ाना दो बार इसे 5 मिनट तक डंडे से हिलाते रहे। महीने भर बाद इस अर्क को छानकर बोतलों में भर लें और अगले 6 महीने तक फसल में लगने वाले सामान्य कीट–पतंगों और बीमारियों की रोकथाम के लिए इसका कीटनाशक की तरह छिड़काव करें। प्रबंधन हेतु करते हैं। छिड़काव से पहले दसपर्णी अर्क की 300 से 500 मिली मात्रा को 15 लीटर पानी में घोलकर पतला कर लें। इतनी मात्रा एक एकड़ के लिए पर्याप्त है।

5. मिश्रित पर्ण-अर्क: इस अर्क को बनाने के लिए 3 किग्रा नीम की पत्तियों को, 2–2 किग्रा अनानास, पपीता, अनार और अमरूद की पत्तियों के साथ पीसें। फिर इस पेस्ट को 10 लीटर गोमूत्र के साथ मिलाकर तब तक उबालें जब तक कि इसकी मात्रा आधी न हो जाए। अगले दिन इस मिश्रित अर्क को छान लें। इसे 6 महीने तक बोतलों में रख सकते हैं। सौ लीटर पानी में 2.5 लीटर मिश्रित अर्क मिलाकर एक एकड़ की फसल में छिड़काव करने से तना, फलों में छेद करने वाले या उसे चूसकर बर्बाद करने वाले कीटों की कारगर रोकथाम हो जाती है।

ख) नीम के बीजों से बने उत्पाद

नीम में पाये जाने वाले 'अजैडिरैच्टिन' नामक तत्व ही रोगाणुओं और कीट–पतंगों का सफ़ाया करने में सबसे प्रभावी भूमिका निभाता है। इस पदार्थ की सबसे ज़्यादा मात्रा नीम के बीजों यानी निमौलिया में पाया जाता है। इसीलिए जैविक कीटनाशक बनाने में नीम के बीज बेहद गुणकारी हैं। नीम के बीजों से निम्न दवाएँ बनती हैं दृ

1. नीम-गिरी-चूर्ण: नीम के सूखे बीजों को कूट–पीसकर महीन चूर्ण (पाउडर) बना लें। इस पाउडर को 2 प्रतिशत की दर से अनाज में मिलकर भंडारण में इस्तेमाल कर सकते हैं। इसी पाउडर को लकड़ी के बुरादे या धान के भूसी या काली चिकनी मिट्टी में बराबर मात्रा में मिलाकर और इसकी छोटी–छोटी गोलियाँ बना रखी जा सकती हैं। इन गोलियों को मक्के या ज्वार के खेत में करीब 100 किग्रा प्रति एकड़ के हिसाब से बिखेरकर तनों में छेद करने वाले कीटों पर प्रभावी नियंत्रण पाया जा सकता है।

2. नीम के बीजों की गोलियाँ: ICAR&CAZRI के वैज्ञानिकों ने नीम बीजों के पाउडर में करीब 12 से 15 प्रतिशत नीम का तेल और एक प्रतिशत यूकेलिप्टस के तेल का इस्तेमाल करके एक ख़ास नीम की गोलियाँ (पैलेट)

बनायी हैं। प्रति एकड़ 100 गोलियों को खेत में छिड़कने से अगले दस महीनों तक दीमक, सफ़ेद गिडार और सूत्र कृमियों जैसे कीटों का प्रभावी नियंत्रण हो जाता है।

3. नीम बीज गिरी अर्क (Neem Seed Kernel Extract- NSKE): ये नीम के फल की गुठली यानी गिरी का अर्क है। इसे बनाने के दो तरीके हैं दृ पहला, 3 किग्रा नयी गिरी और 5 किग्रा दो महीने से पुरानी गिरी कूट–पीसकर इसका चूर्ण बना लें। इस वक़्त सावधानी रखें कि बीजों से नीम का तेल नहीं निकले। दूसरा तरीके के तहत, 5 किलो गिरी को 10 लीटर पानी में 4 घंटे के लिए भिगाएँ। फिर इस गीली गिरी को पीसकर इसका लेई जैसा पेस्ट बना लें। इस पेस्ट को 10 लीटर पानी में घोलकर रात भर छोड़ दें। अगले दिन इस मिश्रण को डंडे से अच्छी तरह हिलाने के बाद महीन कपड़े से मसल–मसल कर छान लें। खेतों में छिड़कने से पहले 10 लीटर नीम बीज गिरी अर्क में 25 लीटर पानी और करीब 350 मिली खादी साबुन का घोल मिलाएँ। एक एकड़ की फसल में ऐसे 250 से 300 घोल का छिड़काव जैविक कीटनाशक के रूप में किया जाना चाहिए।

4. लहसुन नीम अर्क : एक किग्रा लहसुन, आधी मुट्ठी नीम गिरी, 10 किग्रा नीम की पत्तियाँ और 500 ग्राम नीम के तने की छाल को उपयुक्त पानी मिलाकर इसका लेई जैसा पेस्ट बना लें। इस पेस्ट में 12 लीटर पानी मिलाकर उबाल लें। ठंडा होने पर मिश्रण को महीन कपड़े से छान लें तथा बोतलों में भरकर 4–5 सप्ताह तक छाये में रखें। इस लहसुन नीम अर्क को 500 मिली प्रति 15 लीटर पानी में घोलकर हरेक सप्ताह छिड़काव करने से अनेक तरह के कीड़ों से छुटकारा मिल जाता है।

अनाज भंडारण में नीम से कीड़ों की रोकथाम

अनाज के भंडार को कीड़ों से बचाने के लिए छाया में सूखे नीम की पत्तियों का इस्तेमाल करना चाहिए। इन पत्तियों की एक सेंटी मोटी परत को बोरों या भंडारण–पात्र की पेंदी पर बिछा दें। फिर एक फुट ऊँचाई कर अनाज भरें। अब सेंटी मोटी सूखी नीम की पत्ती की तह बिछायें। इस पर फिर एक फुट अनाज भरें। इसी क्रम में भंडारण की सबसे ऊपरी परत भी नीम की सूखी पत्ती की ही बनाएँ। ध्यान रहे कि कीड़ों से बचाव की ये तरकीब उसे अनाज के लिए कारगर साबित नहीं होती जो पहले से कीड़ों की चपेट में आ चुके हैं। इसी तरह, सूखे हुए अनाज के कुल वजह में 2 से लेकर 5 फ़ीसदी के अनुपात से नीम की सूखी पत्तियों का चूर्ण मिलाकर भी उन्हें कीड़ों से सुरक्षित रखा जा सकता है। एक और तरीका ये है कि 10 किलो नीम की पत्तियों को 100 लीटर पानी में उबलकर बनाये गये अर्क में जूट की उन बोरियों को भिगोने और सुखाने के बाद इसे अनाज के भंडारण के लिए इस्तेमाल करें। इसी तरह से मिट्टी से बने भंडारण पात्र में अनाज भरने से पहले उसकी दीवारों और ढक्कन पर ऐसे पेस्ट का मोटा लेप लगाएँ जो नीम की पत्तियों के चूर्ण को गीली मिट्टी में मिलाकर तैयार किया गया हो। लेप के सूखने के बाद इसमें रखा गया अनाज कीड़ों से सुरक्षित रहता है।

नीम का हर हिस्सा है उपयोगी

जहाँ नीम के दातून से दिनचर्या शुरू होती है और नीम के तेल का दीया जलाकर मच्छर भगाकर निश्चिन्त नींद लेने तक चली है। इसीलिए देश के अनेक क्षेत्रों में घर के बाहर पहला पेड़ नीम का ही लगाने की परम्परा रही है। आयुर्वेद में जहाँ नीम की पत्तियों, छाल, तनों से निकला रस, फूल, गोंद, फल, बीज और तेल का उपयोग विभिन्न दवाईयों में होता है, वहीं खेती–बाड़ी में फसलों के विभिन्न कीटों और रोगों के उपचार के लिए नीम की पत्तियों, बीज, तेल और खली का प्रयोग होता है। नीम का तेल भूरे–पीले रंग का, नहीं सूखने वाला, अप्रिय गन्ध और बेहद कड़वे स्वाद का होता है। अथर्वेद में नीम को भानिम्बा कहा गया है तो पुराणों, उपनिषदों और चरक तथा सुश्रुत संहिता जैसे आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसके गुणों का बखान निम्बा, पिचुमर्द, तिक्तक, पिचुमन्द, अरिष्ट, पारिभद्र, हिंगू, हिंगुनिर्यास आदि नामों से हुआ है।

ट्राईकोडरमा जैविक मित्र फफूंद का खेती में महत्व व प्रयोग

सुनील कुमार पीपलीवाल

ट्राईकोडरमा एक घुलनशील जैविक फफूंदीनाशक है जो ट्राईकोडरमा विरिडि या ट्राईकोडरमा हरजिएनम पर आधारित है। ट्राईकोडरमा फसलों में जड तथा तना गलन/सडन, उकठा जो फफूंदी जनित है, में फसलों में लाभदायक पाया गया है। इसका प्रयोग दलहनी फसलों, धान, गेहूँ, कपास, सब्जियों एवं फल वृक्षों का रोगों से प्रभावकारी रोकथाम करता है।

ट्राईकोडरमा के कवक तन्तु फसल के नुकसानदायक फफूंदी के कवक तन्तुओं को लपेटकर या सीधे अन्दर घुसकर उनका जीवन रस चूस लेते हैं और नुकसानदायक फफूंदो का नाश करते हैं। इसके अतिरिक्त भोजन स्पर्द्धा के द्वारा कुछ ऐसे विषाक्त पदार्थ का स्त्राव करते हैं जो बीजों के चारों ओर सुरक्षा कवच बनाकर हानिकारक फफूंदो से बीज को सुरक्षा देते हैं। ट्राईकोडरमा से उपचारित बीज में अंकुरण अच्छा होकर फसलें फफूंदजनित रोगो से मुक्त रहती हैं एवं उनकी वानस्पतिक वृद्धि अच्छी होती है। फसलों में लगने वाले जडगलन, उखठा एवं तनागलन आदि मृदाजनित फफूंद रोगों की रोकथाम के लिए ट्राईकोडरमा नामक मित्र फफूंद बहुत उपयोगी है।

ट्राईकोडरमा की कार्य विधि :–

ट्राईकोडरमा संवर्ध में इस मित्र फफूंद के असंख्य जीवाणु जीवित अवस्था में होते हैं। इससे बीजोपचार, जडोपचार तथा मृदा उपचार करने से फसलों की जड़ों के आसपास इस मित्र फफूंद का जाल भारी संख्या में कृत्रिम रूप से निर्मित हो जाता है। ट्राईकोडरमा मृदा में स्थित रोग उत्पन्न करने वाले हानिकारक कवकों का प्रतिजैविक है तथा यह उनकी वृद्धि रोककर उन्हें धीरे–धीरे नष्ट करता है जिससे ये हानिकारक कवक फसलों की जड़ों को संक्रमित कर रोग उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार ट्राईकोडरमा एक मित्र फफूंद के रूप में मृदा में उपस्थित हानिकारक शत्रु फफूंदो से फसलों की रक्षा करता है।

बीजोपचार :–

भूमिजनित कवकों से ग्रसित होने वाली फसलों के उपचारित किये जाने वाले बीज को किसी साफ बर्तन में रखे तथा बीजों पर थोडे से पानी के छीटे देवे। अब बीजों में 6 से 8 ग्राम ट्राईकोडरमा पाउडर प्रति किलो बीज की दर से मिलाकर अच्छी तरह से उलट पलट देवे। इस प्रकार इस पाउडर की बीजों के चारों ओर एक समान परत चिपक जायेगी। अब बीज की बुवाई कर देवे।

मृदापचार :–

ट्राईकोडरमा पाउडर 2.5 किलोग्राम को 75 किलोग्राम कम्पोस्ट अथवा गोबर की खाद में मिलाकर बुवाई पूर्व अन्तिम जुताई से पहले खेत की मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देवे तत्पश्चात् बुवाई करें।

ट्राईकोडरमा उत्पादन की देशी व सरल विधि :–

किसानों के स्तर पर ट्राईकोडरमा को अधिक मात्राा में उत्पादन करने के लिए एक नई पद्धति विकसित हुई है इसके लिए सबसे पहले जमीन पर 3 मीटर लम्बे, 2 मीटर चौडे एवं 1.5 मीटर गहरे कच्चे गड्ढे बनाते हैं फिर इन गड्ढों में गोबर की खाद डालते हैं। गोबर की खाद पर 50 ग्राम ट्राईकोडरमा पाउडर डालकर गड्ढों को गेहूँ का भूसा या धान की पुवाल से ढक देवे। समय–समय पर पानी का छिडकाव करते रहे जिससे समुचित नमी बनी रहे। 7 से 10 दिन बाद नई गोबर की खाद मिलाकर फावडे से अच्छी तरह से मिला देवे ओर फिर पुवाल से ढककर बराबर पानी का छिडकाव करते रहे। इस प्रकार लगभग 3 महीने में ट्राईकोडरमा से उपचारित गोबर की सडी खाद तैयार हो जाती है। इस खाद का प्रयोग हम मृदा उपचार के

सहायक कृषि अनुसंधान अधिकारी (पौध व्याधि), राज्य जैवउर्वरक गुणनियन्त्रण प्रयोगशाला, दुर्गापुरा, जयपुर

लिए करते हैं। नये गड्ढे तैयार करने के लिए गड्ढो में गोबर की खाद डालने के बाद पहले से तैयार ट्राईकोडरमा उपचारित खाद की कुछ मात्रा मिला देते हैं ओर भूसा से अच्छी तरह से ढककर पानी का छिडकाव करते रहते हैं। इस प्रकार एक बार तैयार की गई खाद आगे भी बार–बार उपयोग में लाई जा सकती है। इस विधि से तैयार गोबर की खाद बहुत अच्छी गुणवत्ता की होती है।

ट्राईकोडरमा का प्रयोग :–

1. बीज उपचार हेतु 6 से 8 ग्राम ट्राईकोडरमा प्रतिकिलोग्राम बीज में सूखा मिलाकर बुवाई करें।
2. भूमि उपचार हेतु 1 किलोग्राम ट्राईकोडरमा को 25 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर एक सप्ताह तक छाया में सूखाने के पश्चात् बुवाई के पूर्व प्रति हैक्टेयर प्रयोग किया जाये।
3. खडी फसल में रोग आने पर प्रथम सिंचाई के उपरान्त पौधों के चारों ओर ट्राईकोडरमा पाउडर को मिट्टी में गोबर की खाद के साथ मिलाकर छिडकाव करके जमीन में मिला देवे।

सावधानियॉ :–

1. ट्राईकोडरमा छारीय मृदा में कम उपयोगी है।
2. उपचारित बीज बोने के पहले सुनिश्चित कर ले कि मृदा में उचित आर्द्रता हो।
3. यह एक जैविक उत्पाद है किन्तु खुले घावों, श्वसन तन्त्र व आंखों के लिए हानिकारक है अतः इसके प्रयोग के समय सावधानी बरतनी चाहिए।
4. इसके प्रयोग से पहले या बाद में किसी रासायनिक फफूंदनाशक का प्रयोग न किया जाये।
5. ट्राईकोडरमा फफूंद कल्चर को सीधी धूप व गर्मी से बचाकर छायादार स्थान में भंडारित करे तथा पाउडर के पैकेट पर अंकित तिथि से पूर्व (एक वर्ष के अन्दर ही) उपयोग करे।

स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के विक्रय केन्द्र का शुभारम्भ

जीरो बजट प्राकृतिक खेती : कृषि की दशा और दिशा बदलने का एक प्रयास

रोहताश कुमार[1], डॉ. सीमा त्यागी[2], शैलेन्द्र कुमार[3] एवं एकता[4]

प्राकृतिक खेती का मुख्य आधार देसी गाय है। प्राकृतिक खेती(natural farming) कृषि की प्राचीन पद्धति है। यह भूमि के प्राकृतिक स्वरूप को बनाए रखती है। प्राकृतिक खेती में रासायनिक कीटनाशक का उपयोग नहीं किया जाता है। इस प्रकार की खेती में जो तत्व प्रकृति में पाए जाते हैं, उन्हीं को खेती में कीटनाशक के रूप में काम में लिया जाता है।

प्राकृतिक खेती में कीटनाशकों के रूप में गोबर की खाद, कम्पोस्ट, जीवाणु खाद, फसल अवशेष और प्रकृति में उपलब्ध खनिज जैसे– रॉक फास्फेट, जिप्सम आदि द्वारा पौधों को पोषक तत्व दिए जाते हैं। प्राकृतिक खेती में प्रकृति में उपलब्ध जीवाणुओं, मित्र कीट और जैविक कीटनाशक द्वारा फ़सल को हानिकारक जीवाणुओं से बचाया जाता है।

प्राकृतिक खेती की आवश्यकता

- पिछले कई वर्षों से खेती में काफी नुकसान देखने को मिल रहा है। इसका मुख्य कारण हानिकारक कीटनाशकों का उपयोग है। इसमें लागत भी बढ़ रही है।
- भूमि के प्राकृतिक स्वरूप में भी बदलाव हो रहे हैं जो काफी नुकसान भरे हो सकते हैं। रासायनिक खेती से प्रकृति में और मनुष्य के स्वास्थ्य में काफी गिरावट आई है।
- किसानों की पैदावार का आधा हिस्सा उनके उर्वरक और कीटनाशक में ही चला जाता है। यदि किसान खेती में अधिक मुनाफा या फायदा कमाना चाहता है तो उसे प्राकृतिक खेती की तरफ अग्रसर होना चाहिए।
- खेती में खाने पीने की चीजें काफी उगाई जाती हैं जिसे हम उपयोग में लेते हैं। इन खाद्य पदार्थों में जिंक और आयरन जैसे कई सारे खनिज तत्व उपस्थित होते हैं जो हमारे स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक होते हैं।
- रासायनिक खाद और कीटनाशक के उपयोग से ये खाद्य पदार्थ अपनी गुणवत्ता खो देते हैं। जिससे हमारे शरीर पर बुरा असर पड़ता है।
- रासायनिक खाद और कीटनाशक के उपयोग से जमीन की उर्वरक क्षमता खो रही है। यह भूमि के लिए बहुत ही हानिकारक है और इससे तैयार खाद्य पदार्थ मनुष्य और जानवरों की सेहत पर बुरा असर डाल रहे हैं।
- रासायनिक खाद और कीटनाशक के उपयोग से मिट्टी की उर्वरक क्षमता काफी कम हो गई। जिससे मिट्टी के पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ गया है। इस घटती मिट्टी की उर्वरक क्षमता को देखते हुए जैविक खाद उपयोग जरूरी हो गया है।

प्राकृतिक खेती का महत्व

- भोजन के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट, 2017 में कहा गया है कि कृषि – पारिस्थितिकी (Agroecology) विश्व की संपूर्ण आबादी को भोजन उपलब्ध कराने और उसका उपयुक्त पोषण सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त पैदावार देने में सक्षम है। ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं जहाँ गाँव प्राकृतिक खेती की ओर आगे बढ़ते हुए ग्रामीण जीवन में रूपांतरण ला रहे हैं तथा शहरों में भी प्राकृतिक खेती के सफल प्रयोग हो रहे हैं।
- बिना सरकारी सहायता के इन उपलब्धियों को देखते हुए कल्पना की जा सकती है कि यदि इसमें राज्य का सहयोग प्राप्त हो तो बड़ी संख्या में किसानों को लाभ मिल सकता है।
- हालांकि भारत सरकार प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिये लोगों को प्रोत्साहित कर रही है किंतु यह प्रोत्साहन प्रचार और जागरूकता के साथ–साथ सब्सिडी और आर्थिक स्तर

1. विद्यावाचस्पति छात्र, प्रसार शिक्षा, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार 2. एटिक प्रभारी, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर 3. कनिष्ठ अनुसंधान साचार्य, भाकृअनुप – केंद्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान मरु क्षेत्रिय परिसर , बीकानेर 4. विद्यावाचस्पति छात्रा, पारिवारिक संसाधन प्रबंधन, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पर भी होना चाहिये।

● भारत बड़ी मात्रा में उर्वरकों पर सब्सिडी देता है। यह सब्सिडी वर्ष 1976–77 की 60 करोड़ रुपए से बढ़कर वर्तमान में 75 हज़ार करोड़ रुपए हो गई है।

● भारत के सबसे बड़े आर्थिक बोझों में से एक सिंथेटिक उर्वरकों के लिये प्रदत्त केंद्रीय सब्सिडी रही है। इसकी तुलना में जैविक क्षेत्र को मात्र 500 करोड़ रुपए की सब्सिडी प्राप्त है।

● इसके अतिरिक्त, परंपरागत कृषि विकास योजना (PKVY) तथा उत्तर–पूर्वी क्षेत्र के लिये जैविक मूल्य श्रृंखला विकास अभियान के दायरे में अत्यंत सीमित क्षेत्र ही हैं। प्राकृतिक खेती के अंतर्गत मात्र 23.02 मिलियन हेक्टेयर भूमि है जो भारत में कुल कृषि योग्य भूमि (181.95 मिलियन हेक्टेयर) की मात्र 1.27 प्रतिशत है।

प्राकृतिक खेती के चार सिद्धांत

1. पहला सिद्धांत है, खेतों में कोई जोताई नहीं करना। यानी न तो उनमें जुताई करना, और न ही मिट्टी पलटना।

धरती अपनी जुताई स्वयं स्वाभाविक रूप से पौधों की जड़ों के प्रवेश तथा केंचुओं व छोटे प्राणियों, तथा सूक्ष्म जीवाणुओं के जरिए कर लेती है।

2. दूसरा सिद्धांत है कि किसी भी तरह की तैयार खाद या रासायनिक उर्वरकों का उपयोग न किया जाए।

इस पद्धति में हरी खाद और गोबर की खाद को ही उपयोग में लाया जाता है।

3. तीसरा सिद्धांत है, निंदाई–गुड़ाई न की जाए। न तो हलों से न शाकनाशियों के प्रयोग द्वारा।

खरपतवार मिट्टी को उर्वर बनाने तथा जैव–बिरादरी में संतुलन स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। बुनियादी सिद्धांत यही है कि खरपतवार को पूरी तरह समाप्त करने की बजाए नियंत्रित किया जाना चाहिए।

4. चौथा सिद्धांत रसायनों पर बिल्कुल निर्भर न करना है।

जोतने तथा उर्वरकों के उपयोग जैसी गलत प्रथाओं के कारण जब से कमजोर पौधे उगना शुरू हुए, तब से ही खेतों में बीमारियां लगने तथा कीट–असंतुलन की समस्याएं खड़ी होनी शुरू हुई। छेड़छाड़ न करने से प्रकृति–संतुलन बिल्कुल सही रहता है।

प्राकृतिक खेती के फायदे

कृषकों की दृष्टि से लाभ

● भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

● सिंचाई अंतराल में वृद्धि होती है।

● रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी आती है।

● फसलों की उत्पादकता में वृद्धि।

● बाज़ार में जैविक उत्पादों की मांग बढ़ने से किसानों की आय में भी वृद्धि होती है।

मिट्टी की दृष्टि से

● जैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है।

● भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है।

● भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होगा।

पर्यावरण की दृष्टि से

● भूमि के जलस्तर में वृद्धि होती है।

● मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।

● कचरे का उपयोग, खाद बनाने में, होने से बीमारियों में कमी आती है।

● फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि

● अंतरराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद की गुणवत्ता का खरा उतरना।

रासायनिक खेती और किसान

● छोटे किसान आजीविका और अस्तित्व के संकट से जूझ रहे हैं। किसान रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के उपयोग से जुड़ी कई समस्याओं का सामना कर रहे हैं।

● भारत के 86 प्रतिशत कृषक लघु व सीमांत कृषक हैं। रासायनिक कृषि कृषकों को ऋणग्रस्तता की ओर धकेलती है और उर्वरक कंपनियों को लाभ प्रदान करती है।

● सरकार प्रदत्त भारी उर्वरक सब्सिडी का लाभ लघु कृषकों को नहीं मिलता बल्कि उर्वरक निर्माता इसका लाभ उठाते रहे हैं।

● केरल राज्य में जैविक खेती पर वर्ष 2008 की रिपोर्ट के अनुसार,

रासायनिक खेती और प्राकृतिक खेती के बीच अंतर

रासायनिक खेती	प्राकृतिक खेती
रासायनिक रूप से प्रबंधित मिट्टी में, पौधों के पोषक तत्वों की पूर्ति केवल अकार्बनिक स्रोत के माध्यम से की जाती है, बिना किसी कार्बनिक स्रोत के भोजन प्राप्त करने के लिए। यह अंततः मृदा–पारिस्थितिकी तंत्र को विकास माध्यम से वंचित कर देता है।	जैविक प्रबंधन में, खाद्य वेब संबंधों और तत्व चक्रण पर ध्यान केंद्रित किया जाता है जिसका उद्देश्य कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता, संवहनीयता और होमोस्टैसिस (संतुलित संतुलन) को अधिकतम करना होता है।
अधिकांश पोषक तत्व जड़ क्षेत्र से बाहर निकल जाते हैं और फसल बेहतर जड़ लंगर के लिए आवश्यक पोषक तत्व को खो सकती है। इसी तरह रासायनिक रूप से प्रबंधित मिट्टी फसलों को अधिक संरचना समर्थन प्रदान नहीं करती है। उपरोक्त के संयोजन से फसल पकती है।	भौतिक (संरचना), रासायनिक (पोषक तत्व परिवर्तन और खनिजकरण) और जैविक गतिविधि (अपघटन) फसल की स्थिति और विकास के पक्ष में हैं। मिट्टी की जीवंतता फसल वृद्धि के लिए एक अच्छा विकास माध्यम और समर्थन प्रदान करती है।
रासायनिक रूप से प्रबंधित मिट्टी मिट्टी में अवशेषों को छोड़ती है और जल पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनता है। कभी–कभी यह मानव पर्यावरण के लिए विषाक्त प्रभाव का कारण बनता है।	सभी प्रथाएं आपस में जुड़ी हुई हैं और अंतिम उत्पाद अपघट्य होगा। इसलिए पर्यावरण प्रदूषण का कोई कारण नहीं है।
अकार्बनिक इनपुट सामग्री महंगी होती है और उत्पादन और संचालन के लिए बहुत अधिक तकनीकी ज्ञान और निवेश की आवश्यकता होती है।	कार्बनिक इनपुट सामग्री कम खर्चीला स्रोत हैं, जो आसानी से उपलब्ध हैं और लागू करने में बहुत आसान है।

पिछले 50 वर्षों से केरल में रसायन गहन कृषि के आरंभ और इसके प्रचलन के परिणामस्वरूप उत्पादकता लगभग स्थिर हो चुकी है।

● उर्वरक, कीटनाशक और जल जैसी बाह्य निविष्टियों की उच्च मांग से प्रेरित कृषि के उच्च लागत की पूर्ति हेतु लिये गए ऋण के कारण किसान ऋण–जाल में फँस गए हैं। इसके परिणामस्वरूप किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनाओं में वृद्धि हुई है।

● खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) ने पुष्टि की है कि रासायनिक कृषि का संबंध कृषक ऋणग्रस्तता और आत्महत्याओं से है तथा यह भी रेखांकित किया है कि वर्ष 1997–2005 के बीच महाराष्ट्र राज्य में 30,000 किसानों ने आत्महत्या की।

● बंबई उच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र में किसानों की आत्महत्या के कारणों को संबोधित करते हुए कहा कि कपास उगाए जाने वाले क्षेत्रों में आत्महत्या की अधिक घटनाएँ हुईं, जहाँ रासायनिक उर्वरकों का उपयोग किया गया था।

● सरकार की प्राक्कलन समिति की वर्ष 2015 की रिपोर्ट में रासायनिक खेती के प्रति वर्तमान नीति की निंदा करते हुए कहा गया था कि विद्यमान उर्वरक सब्सिडी व्यवस्था ने भारतीय कृषि का सर्वाधिक नुकसान किया है।

जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग

जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग मूल रूप से महाराष्ट्र किसान सुभाष पालेकर द्वारा विकसित रसायन मुक्त कृषि का एक रूप है।सुभाष पालेकर के नाम पर इसे सुभाष पालेकर नेचुरल फार्मिंग यानी जीरो बजट प्राकृतिक खेती कहा जाता है । यह विधि कृषि की पारंपरिक भारतीय प्रथाओं पर आधारित है। इस खेती के पैरोकारों का कहना है कि यह खेती देसी गाय के गोबर और मूत्र पर आधारित है।

इस विधि में कृषि लागत जैसे कि उर्वरक, कीटनाशक और गहन सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं होती है। जिससे कृषि लागत में आश्चर्यजनक रूप से गिरावट आती है, इसलिये इसे जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग का नाम दिया गया है। इस विधि के अंतर्गत किसी भी फसल का उत्पादन करने पर उसका लागत मूल्य शून्य (जीरो) ही आता है। जीरो बजट प्राकृतिक खेती के अंतर्गत घरेलू संसाधनों द्वारा विकसित प्राकृतिक खाद का इस्तेमाल किया जाता है

जिससे किसानों को किसी भी फसल को उगाने में कम खर्चा आता है और कम लागत लगने के कारण उस फसल पर किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है। जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग का आधार है जीव–अमृत। यह गाय के गोबर, मूत्र और पत्तियों से तैयार कीटनाशक का मिक्सचर है।

सुभाष पालेकर

सुभाष पालेकर एक पूर्व कृषि वैज्ञानिक हैं और इन्होंने पारंपरिक भारतीय कृषि प्रथाओं को लेकर कई रिसर्च की हुई है। इन रिसर्च की मदद से ही इन्होंने जीरो बजट प्राकृतिक खेती किस प्रकार से की जाती हैं इस पर अध्ययन किया था। अध्ययन के बाद इन्हें 60 से अधिक विभिन्न भारतीय भाषाओं में जीरो बजट प्राकृतिक खेती के ऊपर किताबें भी लिख रखी हैं। वह कहते हैं देसी नस्ल की गाय का गोबर और मूत्र जीव–अमृत के लिए सबसे मुफीद है। एक गाय के गोबर और मूत्र से 30 एकड़ जमीन के लिए जीव–अमृत तैयार किया जा सकता है।

भारत में स्थिति

- आंध्र प्रदेश भारत का पहला ऐसा राज्य है जिसने वर्ष 2015 में जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग की शुरुआत की।
- वर्ष 2024 तक आंध्र प्रदेश सरकार ने जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग को प्रत्येक गाँव तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा है।
- कर्नाटक के किसान संगठन, कर्नाटक राज्य रायथा संघ के द्वारा भी ZBNF को बढ़ावा दिया जा रहा है।
- हाल ही में हिमाचल प्रदेश ने 2022 में पूरे राज्य को प्राकृतिक खेती में बदलने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा है।

वर्मी कम्पोस्ट (केंचुआ)

विकास[1] एवं अनुभव[2]

आज के किसान बहुत सारे रसायनों का प्रयोग कर रहे हैं जिसकी वजह से मिट्टी की सरंचना और उसकी उपजाऊ शक्ति दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। इन रसायनों से निजात पाने के लिए किसान क्या करें। इसका एक उपाय यह है कि इन केमिकल्स को बदलने के लिए ऑर्गेनिक या जैविक पदार्थों का इस्तेमाल करें। माना ऐसा करने में समय तो लगेगा लेकिन आने वाले 2 या 3 साल में मिट्टी की संरचना और उसके उत्पादकता क्षमता को सुधारा जा सकता है। फसलों को स्वस्थ रहने के लिए और उनकी विकास के लिए लगभग 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है और इन पोषक तत्वों को सही समय पर और सही मात्रा में देना बहुत जरूरी है प्राथमिक पोषक तत्व, जिन्हें मैक्रोन्यूट्रिएंट्स के रूप में भी जाना जाता है, वे आमतौर पर सबसे बड़ी मात्रा में आवश्यक होते हैं। वे कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, फास्फोरस और पोटेशियम हैं। द्वितीयक पोषक तत्व वे होते हैं जिनकी आवश्यकता प्राथमिक आवश्यक पोषक तत्वों से कम मात्रा में होती है। कैल्शियम, मैग्नीशियम और सल्फर द्वितीयक पोषक तत्व हैं। जब प्राथमिक या द्वितीयक पोषक तत्वों के सापेक्ष सूक्ष्म या सूक्ष्म पोषक तत्व केवल सूक्ष्म मात्रा में ही आवश्यक होते हैं। बोरान, क्लोरीन, तांबा, लोहा, मैंगनीज, मोलिब्डेनम और जस्ता सूक्ष्म पोषक तत्व हैं। ऐसे पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए हमें रसायनों की बजाय जैविक पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए।

वर्मी कम्पोस्ट का महत्व

जैविक पदार्थों में से एक जैविक आदान है उसका नाम है वर्मी कंपोस्ट जिसे हम केंचुए की खाद कहते हैं। इसका फायदा क्या है, यह पौधों में पोषक तत्वों की भरपाई करता है और उसके साथ मिट्टी की संरचना में भी सुधार करता है। इससे मृदा की जल धारण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है, और खेतों में कार्बनिक पदार्थों की उपलब्धता में भी बढ़ोत्तरी होती है। जैसा कि इस समय में किसान इन पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए बहुत सारे रासायनिक खाद का प्रयोग करते हैं उनमें से एक है यूरिया तो यूरिया में जितने पोषक तत्व होते हैं उसका केवल 30 प्रतिशत भाग ही पौधे को मिल पाता है बाकी 70 प्रतिशत भाग उसका नीचे मिट्टी में और पानी में मिल जाता है जो कि बाद में मिट्टी और पानी को दूषित कर देता है। इस प्रकार के रसायनों को बदलने के लिए वर्मीकम्पोस्ट किसानों के लिए एक प्रभावी उपाय है।

एक वर्मीकम्पोस्ट इकाई के घटक

वर्मी कंपोस्ट आज के समय में एक बहुत अच्छा व्यवसाय है, हम इसे कृषि व्यवसाय इकाई के रूप में लागू कर सकते हैं और साथ ही साथ अपने खेतों में भी इस्तेमाल कर सकते हैं। एक वर्मी कंपोस्ट यूनिट लगाने के लिए किन–किन चीजों की आवश्यकता है:

छाया संरचना

वर्मी कम्पोस्टिंग यूनिट में वर्मी बेड को सुरक्षित करने के लिए यह एक आवश्यक वस्तु है, चाहे वह छोटी हो या बड़ी। उनके पास बांस की छत और पर्लिन के साथ एक फूस की छत हो सकती है, साथ ही लकड़ी या स्टील के ट्रस और पत्थर/आरसीसी खंभे भी हो सकते हैं।

पूंजी निवेश को उचित स्तर पर बनाए रखने के लिए, छत में आसानी से सुलभ बिल्डिंग सिस्टम या छाया जाल का उपयोग किया जा सकता है। शेड की योजना बनाते समय, बिस्तरों के चारों ओर पर्याप्त जगह/मार्ग छोड़ दें ताकि बिस्तरों की लोडिंग और कटाई करने वाले मजदूर आसानी से चल सकें।

जमीन

सुविधा के लिए केंद्र कम से कम 6–8 शेड और तैयार माल के लिए एक अलग क्षेत्र की पेशकश करेगा। एक बोरवेल, पंप सेट, या पानी की व्यवस्था, और अन्य उपकरण जैसा कि योजना अर्थशास्त्र में कहा गया है, को भी शामिल किया जाना चाहिए। जमीन को कम से कम 10–15 साल के लिए लीज पर दिया जा सकता है।

प्लास्टिक पॉलिथीन शीट

प्लास्टिक पॉलिथीन शीट बाजार में आसानी से उपलब्ध है। यह शीट

1,2 अनुसंधान विद्वान, कृषि व्यवसाय प्रबंधन संस्थान, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर–334006,

वर्मीकम्पोस्ट के पानी और पोषक तत्वों को जमीन में नीचे जाने से रोकेगी। पॉलीथिन शीट पर एक बार निवेश करने पर यह 5 साल तक उपलब्ध हो सकता है।

गोबर

गोबर 20–25 दिन पुराना होना चाहिए। उचित होगा कि गोबर गाय का ही हो। गोबर भूरे रंग का होना चाहिए न कि काले रंग का। गोबर को बेड पर प्रयोग करने से पहले गोबर ठंडा होना चाहिए और गैस बाहर निकलनी चाहिए।

केंचुआ

यह एक महत्वपूर्ण खरीद है जिसमें पैसे खर्च होंगे। केंचुआ Eisenia fetida प्रजाति का होना चाहिए। हालांकि कीड़े 6 से 12 महीनों में आवश्यक संख्या प्रदान करने के लिए जल्दी से प्रजनन करते हैं, लेकिन बुनियादी ढांचे पर इतना खर्च करने के बाद इतना इंतजार करना समझदारी नहीं होगी। इस प्रकार, 1 किलो कीड़े प्रति घन मीटर बेड मात्रा के साथ शुरू करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए और अनुमानित उत्पादन को प्रतिकूल रूप से कम किए बिना दो या तीन चक्रों में अपेक्षित आबादी का निर्माण करेगा।

पानी की आपूर्ति प्रणाली

क्योंकि बिस्तरों को हर समय गीला रखा जाना चाहिए, लगभग 40 प्रतिशत की नमी के साथ, एक जल स्रोत, एक उठाने की व्यवस्था, और ऐसे वर्मी–बेड में पानी ले जाने और प्रशासित करने के लिए एक प्रणाली की योजना बनाई जानी चाहिए। निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित करने और पानी के संरक्षण के लिए चौबीसों घंटे प्रवाह व्यवस्था वाले ड्रिपर बहुत उपयोगी होंगे। उस जल आपूर्ति के बुनियादी ढांचे के लिए एक बड़े प्रारंभिक व्यय की आवश्यकता है। हालांकि, यह हाथ से पानी देने के खर्च को कम करता है और लंबे समय में अधिक लागत प्रभावी है। ऐसी चीजों की लागत इकाई की क्षमता और चयनित जल आपूर्ति के प्रकार द्वारा निर्धारित की जाएगी।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए आर्थिक विश्लेषण

वर्मी कंपोस्ट यूनिट की आर्थिक गणना को विस्तार से समझते हैं, जैसे कि आपको पता है कि कंपोस्ट तैयार होने में 60 दिन का समय लगता है और पहले 60 दिनों में जैसा कि ऊपर तालिका में दिया गया है कोई लाभ नहीं हो रहा है। परंतु जैसे–जैसे आप बेड की संख्या में बढ़ोतरी करेंगे आपको लाभ होगा।

पहली बार कंपोस्ट बनाने में लाभ नहीं हुआ। क्योंकि हमने केवल एक बेड से शुरुआत की है और ढांचा ज्यादा

वर्मीकम्पोस्ट यूनिट की पहली 60 दिनों की आर्थिक गणना (1-60)				
	आवश्यक सामग्री	कीमत (₹)	विपणन योग्य खाद	विपणन योग्य खाद का मूल्य (₹)
बेड की संख्या	1			
केंचुआ	25 kg	5000		
गाय का गोबर	1250 kg	625	750kg	4500
बेड की संख्या के लिए संरचना निर्माण	4	4000		
कुल (₹)		9625		4500
नुकसान (₹)	5125			

अगले 60 दिनों के लिए वर्मीकम्पोस्ट यूनिट की आर्थिक गणना (61-120)				
	आवश्यक सामग्री	कीमत (₹)	विपणन योग्य खाद	विपणन योग्य खाद का मूल्य (₹)
बेड की संख्या	2			
केंचुआ	50 kg	0		
गाय का गोबर	2500 kg	1250	1500 kg	9000
बेड की संख्या के लिए संरचना निर्माण	0	0		
कुल (₹)		1250		9000
पिछले नुकसान की वसूली के बाद लाभ (₹)	2625			

अगले 60 दिनों के लिए वर्मीकम्पोस्ट यूनिट की आर्थिक गणना (120-180)				
	आवश्यक सामग्री	कीमत (₹)	विपणन योग्य खाद	विपणन योग्य खाद का मूल्य (₹)
बेड की संख्या	4			
केंचुआ	100 kg	0		
गाय का गोबर	5000 kg	2500	3000 kg	18000
बेड की संख्या के लिए संरचना निर्माण	0	0		
कुल (₹)		1250		18000
लाभ (₹)	16750			

बेड का बनाया है, जो कि हमें आने वाले समय में लाभ देगा हमारे बेड की संरचना 25 ' 4 फीट की है यानी कि 100 वर्ग फिट एक बेड के लिए और इसमें केंचुए और गोबर की आवश्यकता क्रमशः 25 किलो और 1250 किलो होगी। तथा इनकी शुरुआती कीमत क्रमश 15 हजार और ₹625 होगी इसके अतिरिक्त 4 बेड के लिए छायादार ढांचा बनाने में ₹4000 का खर्च आएगा। जो गोबर हमने काम में लिया है उसका 60प्रतिशत ही बाजार में बेचने योग्य होगा क्योंकि बचे हुए 40प्रतिशत में केवल केंचुए बचेंगे जो हमें आगे बेड की संख्या बढ़ाने में काम देंगे।

पहले 60 दिनों की वर्मी कंपोस्ट यूनिट में हमें लाभ तो नहीं हुआ परंतु केंचुआ के रूप में लाभ भी हुआ है क्योंकि अब हमारे पास पर्याप्त के हुए हैं जिनसे हम बेड की संख्या बढ़ा सकते हैं। क्योंकि केंचुए 60 से 70 दिन में अपनी संख्या को दोगुना कर लेते हैं। शुरुआती एक बेड के लिए हमने 25 किलो केंचुए लिए थे और अब यह बढ़कर 50 किलो हो गए हैं। तथा इन 50 किलो केंचुए की सहायता से हम अब दो बेड की संरचना को बना पाएंगे। अब हमें केवल एक ही खर्च करना है वह है गोबर खरीदने में, हमें दो बेड की संरचना बनाने में 2500 किलो गोबर की आवश्यकता होगी। और यह गोबर हमें बाजार भाव के हिसाब से 1250 ₹ में उपलब्ध होगा। जैसा कि उल्लेखित किया गया है कि कुल गोबर का 60प्रतिशत भाग आप वर्मी कंपोस्ट के रूप में बाजार में बेच पाएंगे यानी कि इस बार हमारे पास 1500 किलो वर्मी कंपोस्ट बेचने के लिए उपलब्ध होगा। तथा इस 1500 किलो वर्मीकंपोस्ट का बाजार मूल्य ₹6 प्रति किलो के हिसाब से ₹9000 होगा। यदि हम पहली 60 दिनों की वर्मी कंपोस्ट के दौरान हुए नुकसान की भी भरपाई करते हैं तो भी हमें 2625 रुपए का लाभ होगा।

अब समझते हैं कि जब आप तीसरी बार वर्मी कंपोस्ट बनाएंगे तो आपको कितना लाभ होगा क्योंकि हमने शुरुआत में 4 बेड कि संरचना बनाई थी और अभी तक हमने 4 बेड की संरचना का अधिकतम उपयोग नहीं किया है। हमने पिछली बार 50 किलो केंचुए उपयोग में लिए थे और अब इन केंचुआ की संख्या 60 दिनों में दुगनी हो गई है यानी कि 100 किलो। अर्थात आप अब 100 किलो केंचुओं की सहायता से 4 बेड वर्मी कंपोस्ट आराम से बना पाएंगे। जिसके लिए हमें आवश्यकता होगी 5000 किलो गोबर की। और इस गोबर से हम 60 प्रतिशत यानी कि 3000 किलो वर्मी कंपोस्ट प्राप्त कर पाएंगे। जिसका बाजार मूल्य ₹6 प्रति किलो के हिसाब से ₹18000 होगा। और 5000 किलो गोबर को खरीदने में जो हमने 1250₹ का व्यय किया है उसको निकालने के बाद ₹16750 का शुद्ध लाभ प्राप्त होगा। पहले दिन से 180 में दिन यानी कि 6 महीने के पूरे चक्कर में आप समझ सकते हैं कि आप का लाभ धीरे–धीरे बढ़ेगा और जैसे–जैसे आप यूनिट की संख्या बढ़ाएंगे वैसे वैसे आप का लाभ भी बढ़ेगा।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि

अब बात करें बेड के निर्माण की, एक बेड के बनाने के लिए 25 फीट लंबाई, 4 फीट चौड़ाई और 1.5 फीट ऊंचाई होनी चाहिए। और दो बेड के बीच की दूरी 1 से 2 फिट होनी चाहिए। केंचुआ छायादार स्थान पर जीवित रहता है। अतः वर्मीकम्पोस्ट प्रक्रिया के लिए छाया प्रदान करना आवश्यक है।

केंचुए की खाद बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बातों का विशेष ध्यान रखना है तो सबसे पहले जो गोबर है वह आपको कम से कम 20 या 25 दिन पुराना लेना है और उसको 7 दिन तक रखना है उसमें पलटवार करना है और 7 दिन तक उसमें पानी का छिड़काव करना है जिससे कि उसकी गर्मी और उसमें जो भी गैस हैं वह बाहर निकल जाए और यह बिल्कुल ठंडा हो जाए। गोबर को ठंडा होने के बाद उसके बेड बनाने हैं और फिर उन में केंचुए डालने हैं तो अब इस प्रोसेस को करना है लगातार पानी देना है और पानी देने का प्रावधान यह है कि आप को कम से कम 40प्रतिशत नमी हर एक बेड में होनी चाहिए अगर इससे कम होगी या ज्यादा होगी तो केंचुआ जीवित नहीं कर पाएंगे। लगभग 60 दिनों में सड़ने के बाद वर्मी कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाएगा। उसके बाद में आप उसको हार्वेस्ट कर सकते हैं और हार्वेस्ट करने के लिए कुछ मुख्य बातों का ध्यान रखें। सबसे पहले ऊपर की 4cm की जो परत है उसको पहले परत को ढीला करना पड़ेगा फिर उसके बाद उसको छोड़ना पड़ेगा ताकि जो ऊपर वाले केंचुए को नीचे चले जाएं और फिर उस 4 सेंटीमीटर परत को उतार लें और उतार के साइड में कर लें। ऐसे ही कर कर के आप उसके ऊपर की परत उतार सकते हैं और आप परिणामी वर्मीकम्पोस्ट बेच सकते हैं।

उपयोग की विधि और मात्रा

विभिन्न फसलों के लिए वर्मीकम्पोस्ट का प्रयोग औसतन 2–5 टन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से किया जा सकता है। आम तौर पर विभिन्न फसलों में इसका उपयोग

निम्नलिखित मात्रा में किया जा सकता है:

क्रमांक	फसल	केंचुआ खाद की मात्रा / हैक्टर
1.	अनाज की फसलें	2 टन/हेक्टेयर
2.	दालें	2 टन/हेक्टेयर
3.	तिलहन फसलें	3–5 टन/हेक्टेयर
4.	मसाले की फसलें	4 टन/हेक्टेयर
5.	नकदी फसलें	5 टन/हेक्टेयर
6.	रोपण फसलें	5 किग्रा/पौधे
7.	फलदार पेड़	2–3 किग्रा/पौधे

अखबार में प्रकाशित विश्वविद्यालय समाचार

अच्छी पौध-बीज सामग्री वो भी मात्र लागत मूल्य पर उपलब्ध रहेगी: कुलपति प्रो आर पी सिंह

स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के विक्रय केंद्र के नर्सरी काउंटर का उद्घाटन कुलपति प्रो आर.पी.सिंह करते हुए। (प्रेस)

डेढ़ सौ किसानों ने खरीफ बीज दिवस पर उन्नत बीजों के लाभों के बारे में जाना

स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के संग्रहालय स्थित सभागार में खरीफ बीज दिवस पर कुलपति प्रो. आर. पी. सिंह ने बीज विक्रय काउंटर का उद्घाटन किया।

- बीज विक्रय काउंटर का उद्घाटन कर किसानों से संवाद किया

खरीफ बीज दिवस : 'बीज विक्रय काउंटर' का उद्घाटन एवं किसानों से संवाद कार्यक्रम

बिहार- झारखण्ड जैसे सुदूर राज्यों के किसान राजस्थान से बीज ले जाते है : प्रो आर पी सिंह

राजस्थानी चिराग रिपोर्टर

बीकानेर। स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के संग्रहालय स्थित सभागार में आज डेढ़ सौ किसानों ने खरीफ बीज दिवस पर उन्नत बीज व बीजों से होने वाले लाभों के बारे में जाना और कृषि वैज्ञानिकों-विशेषज्ञों को सुना। कार्यक्रम की जानकारी देते हुए अतिरिक्त निदेशक (बीज) डॉ एन के शर्मा ने बताया कि राष्ट्रीय बीज परियोजना के अंतर्गत आयोजित खरीफ बीज दिवस कार्यक्रम में बीकानेर व आसपास के जिलों से किसानों ने भाग लेकर कृषि वैज्ञानिकों व विशेषज्ञों को सुना और सवाल पूछे। किसानों से संवाद के उपरांत 'बीज विक्रय काउंटर' का उद्घाटन कुलपति प्रो आर पी सिंह द्वारा किया गया। किसानों को संबोधित करते हुए कुलपति प्रो आर पी सिंह ने कहा कि विश्वविद्यालय के पास पर्याप्त उन्नत किस्म की बीज

उपलब्ध है और वह जब चाहे बीज क्रय कर सकते हैं। उन्होंने बिहार व झारखंड भ्रमण के दौरान राजस्थान की बीज की मांग का जिक्र करते हुए बताया कि हमारे यहां के बीज की मांग पूरे देश में रहती है। अतः आप पहले आओ पहले पाओ के हिसाब से उन्नत बीज क्रय करके रखें। ब्रीडर सीड जितना मिले उतना अच्छा है इसके अनेक फायदे हैं। मात्र 15% किसान ही उन्नत बीज के से जुड़े फायदों के बारे में जानते हैं और अन्य किसान जानकारी के अभाव में इसका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। कुलपति प्रो सिंह ने किसानों को तकनीकी जानकारी के लिए विशेषज्ञ व वैज्ञानिकों की नंबर तथा आए हुए सभी किसानों को विश्वविद्यालय का कैलेंडर वितरित करने हेतु कहा। इस अवसर पर अनुसंधान निदेशक डॉ पी एस शेखावत किसानों को बताया कि कैसे उन्नत बीज से पैदावार बढ़ाई जा सकती है। डॉ एन के शर्मा ने किसानों को बताया कि बीज कृषि का आधार है जिस तरह से मानव शरीर में रीढ़ की हड्डी का महत्व है उसी तरह से कृषि में बीज का सर्वाधिक महत्व रहता है। विक्रय काउंटर पर वर्तमान में मूंग की तीन, मोठ की चार और ग्वार की तीन विभिन्न किस्मों के बीज 05 किलो, 20 किलो व 40 किलो की पैकिंग में उपलब्ध है। भू-सादृश्यता एवं राजस्व निदेशक डॉ दाताराम ने फर्टिलाइजर व इंसेक्टिसाइड पर किसानों को व्याख्यान दिया। इस अवसर पर डॉ पी सी गुप्ता डॉ एस आर यादव ने भी किसानों को संबोधित किया। डॉ सुभाष चंद्र, डॉ वीर सिंह, डॉ दीपाली भवन, इंजीनियर जे के गौर , डॉ सीमा त्यागी, डॉ सुशील डॉ उपेंद्र मील सहित अन्य सदस्य उपस्थित रहे।

किसानों ने क्या क्या पूछा- उन्नत बीज, हाइब्रिड बीज क्या है? बीज कितना मिल सकता है? सब्जियों के बीज, फलों के बीज, और दलहन तिलहन के बीज पर सवाल जवाब किए।

बिहार कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति ने दिखाई खजूर में दिलचस्पी

मूंगफली की उन्नत खेती

डॉ. रणवीर कुमार यादव[1], डॉ. रणजीत सिंह[2], डॉ. अमर सिंह गोदारा[3], डॉ. भँवर देवी सिंह नाथावत[4]

मूंगफली एक मुख्य तिलहनी फसल है जिसमें अच्छी गुणवत्ता का 40–45 प्रतिशत तक तेल पाया जाता है। इसकी खली का उपयोग पशुओं को खिलाने एवं खेती में खाद के रूप में भी उपयोग में किया जाता है। इसमें दो प्रकार की किस्में होती है। पहली सीधे गुच्छे में बढ़ने वाली तथा दूसरी समान्तर फैलने वाली, इसकी जड़ों में भी राइजोबियम जीवाणु की जड़ ग्रन्थियां पाई जाती है जो वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करती है।

उन्नत किस्में

टी.जी. 37 ए : इस किस्म के पौधे सीधे अर्द्ध ऊंचाई व मध्यम शाखाओं वाले होते है। इसका छिलका चमकीला एवं चिकना होता है तथा दाने 2–3 होते हैं। यह किस्म 105–110 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत पैदावार 25–32 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक होती है।

टी.बी.जी. 39 : यह किस्म मध्यावधि (116–120 दिन) तथा कम फैलने वाली है। इसके दाने मोटे होते हैं। 1000 दानों का वजन 660 ग्राम होता है। इसकी औसत पैदावार 32 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसमें सुषुप्तावस्था मध्यम रूप की पाई जाती है।

चन्द्रा : यह जमीन पर फैलने वाली किस्म है जिसकी प्रत्येक फली में 1–3 दाने होते हैं। इसके दानों में तेल की मात्रा 48 प्रतिशत के साथ फली में दानों का अनुपात 70 प्रतिशत होता है। हजार दानों का वजन 860 ग्राम होता है। इसकी औसत उपज 24–28 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक होती है।

एच.एन.जी. 10: यह फैलने वाली किस्म है। इसके 1000 दानों का वजन 450 ग्राम होता है, दाने छोटे आकार के गुलाबी रंग के होते हैं। इसकी पकाव अवधि 135–140 दिन एवं औसत पैदावार 16–20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

गिरनार –2 : यह दोमट मिट्टी के लिए उपयुक्त अर्द्धविस्तारी किस्म है जिसकी पकाव अवधि 125–130 दिन है। इसकी गुली मोटी एवं भूरे रंग की जिसमें दानों में 51 प्रतिशत तेल होता है एवं हजार दानों का वजन 500 ग्राम होता है। इसकी औसत उपज 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

मल्लिका : इस किस्म के पौधे अर्द्धविस्तारी प्रकार के होते हैं। पौधे हल्के हरे रंग की पत्तियों वाले मध्यम आकार के होते हैं। फलियों में दाना 68 प्रतिशत, मोटी एवं दो दानों वाली होती है। हजार दानों का वजन 730 ग्राम होता है। यह किस्म सींगदाना बनाने में उपयुक्त है। इसकी पकाव अवधि 125–130 दिन है। औसत पैदावार 24–28 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

एच.एन.जी. 123 : यह अर्द्धविस्तारी किस्म है। इस किस्म के दाने लाल बैंगनी रंग के होते हैं। हजार दानों का वजन 540 ग्राम होता है। इसकी औसतम उपज 24–25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। यह किस्म लोहे की कमी से होने वाली पीलेपन की बीमारी के प्रति सहनशील है।

आर. जी. 425 (राज दुर्गा) :यह मूंगफली की अर्द्धविस्तारित किस्म 125–130 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके दानों का रंग हल्का गुलाबी तथा सफेद रहता है। इसकी औसत उपज सिंचित क्षेत्रों में 32–36 क्विंटल एवं असिंचित क्षेत्र में 15–18 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। यह किस्म कॉलर रोट के प्रतिरोधी है।

इन किस्मों के अलावा जीजी–20, जी. जे.जी. 18, आर.जी. 559, आर.जी. 510 भी अच्छी किस्में है।

मृदा एवं भूमि की तैयारी

मूंगफली के लिए रेतीली दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। मूंगफली भारी दोमट एवं क्षारीय मृदाओं में अच्छी नहीं होती है। मूंगफली के लिए जमीन की दो–तीन बार गहरी जुताई करनी चाहिए क्योंकि यह जमीन के अन्दर लगती हैं जहां मृदा में नमी नहीं हो वहां मूंगफली को पलेवा कर बुआई करनी चाहिए।

बीज का चुनाव

मध्यम आकार के बीज मूंगफली की बुआई हेतु उपयुक्त होते है। सामान्यता गुच्छे वाली मूंगफली की किस्मों की बीज दर 80 किलोग्राम व फैलने वाली किस्मों हेतु 60 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से काम लेते हैं।

बीज उपचार एवं बुआई

मूंगफली में बीज जनित रोगों के लिए कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम या टेबुकोनाजोल (2डी.एस) 1.5 ग्राम या कार्बोक्सिन (37. 5 प्रतिशत) + थायरम (37.5 प्रतिशत) दो ग्राम या प्रोपेकोनोजाल 2 मिली ग्राम की दर से उपचारित करना चाहिए। जैविक कल्चर ब्रेडी राइजोबियम ग्रुप

1. सहायक आचार्य (शस्य विज्ञान), 2. सह आचार्य (मृदा विज्ञान)3. सह आचार्य (शस्य विज्ञान) 4. सहायक आचार्य (पौध व्याधि विज्ञान) कृषि अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

जैसे एन.सी. 92, आई.. जी. आर. 6 एवं फास्फोरस घोलक जीवाणु सुडोमोनास स्टेरीटा या बेसीलस पोलीमिक्सा से उपचारित करके बोये जिससे पौधों को नत्रजन एवं फास्फोरस तत्वों की उपलब्धता में बढ़ोत्तरी होती है। मूंगफली की बुआई जून माह में करनी चाहिए। बीज की गहराई 5 से 7 सेमी रखनी चाहिए जिसमें बीमारियों का प्रकोप भी कम होता है।

जहाँ दीमक का प्रकोप हो वहां 6 मिली क्लोरपाईरिफोस 20 ई.सी. प्रति किलोग्राम के हिसाब से बीज उपचारित करना चाहिए। जहां सफेद लट का प्रकोप हो वहां इमिडाक्लोप्रिड 50, डब्लू जी 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीज उपचारित करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबन्धन

मूंगफली में उर्वरक मृदा जांच के आधार पर या 20 किलोग्राम नत्रजन व 40 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हैक्टेयर की दर से बुआई पूर्व खेत में डाले। अच्छी उपज के लिए 250 किलोग्राम जिप्सम सल्फर व कैल्सियम की आपूर्ति के लिए बुआई से पूर्व या 30–35 पर अन्तः शस्य क्रियाएं करते समय कतारों के पास में देवे।

कॉलर रोट (संधि विगलन) एवं जड़ गलन

यह रोग कवक द्वारा फैलता है। इसका फैलाव बीज एवं भूमि दोनों द्वारा होता है। रोग के प्रारम्भिक लक्षण 15–20 दिन बाद दिखाई देने लगते हैं। प्रारम्भ में तना एवं जड़ संगत वाले स्थान पर गल जाते हैं तथा जड़ें काली पड़ जाती हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए बीज को थाइरम कवकनाशी से 3 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। बुआई से पूर्व 4–5 किलोग्राम ट्राईकोडर्मा हरजेनियम प्रति हैक्टेयर की दर से गोबर की खाद के साथ मिलाकर बुआई करनी चाहिए।

पत्ती धब्बा या टिक्का रोग : यह मूंगफली की फसल का मुख्य रोग है। यह दो प्रकार का होता है।

1. अगेती धब्बा रोग – इसके लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। फसल की बुआई के 20–30 दिन 1 से 10 मिलीमीटर व्यास के वृताकार व अनियमित आकार के धब्बे बनते हैं। धब्बों के चारों ओर पीली झिल्ली बन जाती है। पत्ती की ऊपरी सतह पर धब्बे का रंग लाल–भूरा या काला तथा निचली स्तर पर हल्का भूरा होता है।

2. पछेती धब्बा रोग – यह अगेती धब्बा रोग की तुलना में अधिक नुकसान दायक होता है। इस रोग में धब्बों का आकार 1 से 6 मि.मी. व्यास के गोलाकार तथा रंग गहरा भूरा या काला होता है। धब्बे पत्तियों के अलावा तनों पर भी पाये जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पत्तियां गिर जाती हैं इसके कारण उपज में अत्यधिक हानि होती है। ये दोनों रोग बीज एवं भूमि जनित है। इस वजह से फसल की प्राथमिक स्थिति में उग्र रूप ले लेते हैं। वातावरण में 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान व अधिक आर्द्रता रोग के संक्रमण एवं प्रसार में सहायक होती है। रोग का द्वितीयक संक्रमण पौधों से रोग के बीजाणुओं का विसर्जन जो कि हवा, कीट एवं वर्षा द्वारा होता है।

रोग नियंत्रण :

अ. शस्य क्रियाओं में फेर बदल –

1. फसल चक्र में मूंगफली फसल के अतिरिक्त अन्य खरीफ फसलों को शामिल करना चाहिए।
2. रोग ग्रस्त फसल के अवशेषों को फसल समाप्ति के बाद खेत से निकालकर जला देना चाहिए या गड्ढे में दबा देना चाहिए।
3. स्वतः उगे मूंगफली के पौधों को उखाड़कर अलग कर देना चाहिए।
4. खेत के अन्दर व आस पास उगे खरपतवारों को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए।
5. यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो मूंगफली की अगेती बुवाई (जून माह के शुरू में) करके फसल को रोग से काफी हद तक बचाया जा सकता है।

ब. फफूंदनाशक दवाइयों का उपयोग – फफूंदनाशियों का छिड़काव फसल पर रोग के लक्षण दिखाई देते ही कर देना चाहिए। तत्पश्चात् 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव को दोहराते रहना चाहिए। रोग प्रसार के लिए अनुकूल परिस्थितियां होने पर छिड़काव का अन्तराल कम कर देना चाहिए। निम्न में से कोई एक दवा का छिड़काव करें। मैन्कोजेब 75 डब्ल्यू.पी. 2.5 ग्राम प्रति लीटर या कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर या प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. 1.25 एम.एल. प्रति लीटर पानी में घोलकर फसल पर अच्छी तरह छिड़काव कर देना चाहिए। यह रोली रोगी को भी नियन्त्रित करती हैं।

रोली रोग या किट्ट रोग – यह रोग पक्सीनिया अरेचिडिस नामक फफूंद से उत्पन्न होता है। सर्वप्रथम पत्ती की निचली सतह पर संतरा रंग के छोटे–छोटे दाने दिखाई देते हैं। बाद में, ये दाने पत्ती की ऊपरी सतह पर उभर आते हैं। दानों की आकृति गोलाकर तथा आकर 0.5 से 1.4 मिमी व्यास के होते हैं। इस रोग के लक्षण पौधे के सभी ऊपरी भागों पर प्रकट होते हैं। संक्रमित पौधों के दाने सिकुड़े हुए तथा छोटे रह जाते हैं, जिससे उपज में गिरावट आ जाती हैं। प्रायः यह रोग पत्ती धब्बा रोग (टिक्का रोग) के साथ ही प्रकट हो जाता है।

रोग नियंत्रण

1. शस्य क्रियाओं में परिवर्तन –

1. एक ही खेत में लगातार एक के बाद दूसरी मुंगफली की फसल नहीं उगाना

चाहिए।
2. स्वतः उगे मूंगफली के पौधों को उखाड़कर निकाल देना चाहिए।
3. खेत के अन्दर व आस पास उगे खरपतवारों को नष्ट करते रहना चाहिए।

2. कवकनाशी रसायनों का प्रयोग – रोग के लक्षण दिखाई देते ही, मैन्कोजेब 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव कर देना चाहिए। इस छिड़काव को 15 दिन के अन्तराल पर फिर दोहराना चाहिए। क्लोरोथैलोनिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यह टिक्का रोग को भी नियंन्त्रित करती हैं।

विषाणु द्वारा उत्पन्न रोग –

विषाणु गुच्छा रोग – इस रोग को पीनट कलम्प के नाम से भी जाना जाता हैं। इस रोग के कारण पौधे अत्यधिक बोने, गहरे हरे रंग के व गुच्छों में परिवर्तित हो जाते हैं। खेत में रोग के लक्षण प्रारम्भ में छोटे–छोटे समूहों में तथा बाद में पूरे खेत में फैल जाते हैं। यह एक प्रकार का विषाणु जनित रोग है, जो भूमि में विद्यमान पोलीमिक्सा ग्रेमिनिस नामक कवक द्वारा संचरित होता है। यह विषाणु खाद्यान्न व घास कुल की खरपतवारों की जड़ों में निवास करता है।

रोग नियंत्रण

अ. शस्य क्रियाओं में फेरबदल–

1. घास कुल के खरपतवारों को खेत से निकालते रहना चाहिए।
2. मूंगफली के रोग ग्रस्त खेतों में रबी मौसम में सरसों की फसल उगायें।
3. रोग ग्रस्त फसल से प्राप्त बीजों को प्रयोग न करें।
4. रोग ग्रस्त खेतों में, मूंगफली बोने से पूर्व, ग्रीष्मकाल में बाजरे की बुवाई करें। बीज की मात्रा 100 किलो प्रति हैक्टेयर के आस पास रखे तथा बुवाई के 15 दिन बाद बाजरे के पौधों को खेत में हल चलाकर पलट दें। तत्पश्चात मूंगफली बोयें।

ब. रसायनों का प्रयोग – मूंगफली बोने के समय कोपर ऑक्सीक्लोराइड नामक कवकनाशी का 10 किलो प्रति हेक्टेयर की दरे से घोल बनाकर कुढ़ों में छिड़काव करें।

कलिका क्षय या ''बड़ नेक्रोसिस'' रोग – प्रारम्भिक अवस्था में इस रोग से नई विकसित पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे व धारियां बन जाती हैं। बाद में कोमल पत्तियां कोपले निकलने के कुछ ही दिन बाद सूखना प्रारम्भ कर देती हैं। रोग की उग्रावस्था में पौधे की बढ़वार रूक जाती हैं तथा पौधा झाड़ीनुमा हो जाता है। बीज सिकुड़े हुए तथा छोटे रह जाते हैं। इस विषाणु का संचरण थ्रिप्स कीट द्वारा होता है।

रोग नियंत्रण

अ. शस्य क्रियाओं में परिवर्तन–

1. बुवाई देरी से करें। (जुलाई के प्रथम या दुसरे सप्ताह में)
2. बीज की मात्रा सामान्य से अधिक रखें।
3. कतार से कतार की दूरी सामान्य से कम रखें।
4. रोग रोधी किस्में बोयें यदि उपलब्ध हो तो।

ब. रासायनिक उपचार– 4 दिन की फसल होने पर कीटनाशी रसायन जैसे डाइमिथोएट या मोनोक्रोटोफॉस आदि का 2 बार छिड़काव करें।

लौह पोषक तत्व की न्यूनता का रोग –

इस रोग से फसल पीली पड़ जाती है तथा उपज में भारी गिरावट आ जाती हैं।

रोग नियंत्रण

1. समस्याग्रस्त खेतों में प्रति तीसरे वर्ष हरा कसीस (फेरस सल्फेट) 25 कलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुवाई से पूर्व खेत में मिला देवें।
2. हरा कसीस के 0.5 प्रतिशत घोल का दो बार छिड़काव करें। पहला छिड़काव फूल आने से पहले तथा दूसरा फूल आने के बाद करें।

स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संचालित कृषि विज्ञान केन्द्र

क्र. सं.	विवरण	दूरभाष संख्या व ई–मेल	वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष का नाम	मोबाईल नम्बर व ई–मेल
1.	कृषि विज्ञान केन्द्र, आबूसर–झून्झुनु	01592-233420 kvkabusar@gmail.com	डॉ. दयानन्द	9414580364 dr.dayanand04@gmail.com
2.	कृषि विज्ञान केन्द्र, बीछवाल–बीकानेर	0151-2250944 kvkbikaner@gmail. com	डॉ. दुर्गा सिंह	09424581584 dskhanpur@rediffmail.com
3.	कृषि विज्ञान केन्द्र, चॉदगोठी–चूरू	kvkchuru2@gmail.com	डॉ. आर.के. शिवरान	9414937819 rshivranars2007@gmail.com
4.	कृषि विज्ञान केन्द्र, जैसलमेर	02992-251359 kvkjaisalmer@gmail.com	डॉ. दीपक चतुर्वेदी	9414283678 dchatext@gmail.com
5.	कृषि विज्ञान केन्द्र, लूनकरनसर, बीकानेर	kvklunkaransar@gmail.com	डॉ. मदन लाल रैगर	9413123126 drmadanagro@gmail.com
6.	कृषि विज्ञान केन्द्र, पदमपुर–श्रीगंगानगर	kvksgnr@gmail.com	डॉ. भूपेन्द्र सिंह	9601912929
7.	कृषि विज्ञान केन्द्र,पोकरण–जैसलमेर	02994-222316 kvkpokaran@gmail.com	डॉ. बलबीर सिंह	9667410348 balbirdr@gmail.com

जून माह के कृषि कार्य

डॉ. पी.एस. शेखावत, निदेशक अनुसंधान,
स्वा. के.रा.कृ.वि. बीकानेर

सस्य विज्ञान

1. **देशी कपासः**—देसी कपास में प्रथम सिंचाई का उपयुक्त समय बुवाई के 35—40 दिन बाद का है पानी का वितरण समान रुप से किया जाना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा 7.5 कि.ग्रा. है जो बुवाई के समय नहीं दी है उसे प्रथम सिंचाई के समय प्रति बीघे के हिसाब से दिया जा सकता है। उर्वरक समान रुप से कतारों में देवें। ध्यान रहे उर्वरक पत्तियों पर न गिरें। देसी कपास में सिंचाई के पश्चात् निराई—गुड़ाई का करना लाभदायक पाया गया है। यह कार्य त्रिफाली या कस्सी से करें। प्रथम सिंचाई बुआई के 35—40 दिन के मध्य हो, आवश्यकता से अधिक पौधों को उखाड़कर पौधें की संख्या लगभग 12 हजार पोधे प्रति बीघा रखें।

2. **नरमाः**—प्रथम सिंचाई बुवाई के 4—5 सप्ताह के पश्चात् दी जाये। इस समय पौधों को पानी की आवश्यकता सीमित होती है। करीब 6 सप्ताह तक पौधों के विकास का समय होता है। इस समय पौधे को पानी की आवश्यकता पहले के मुकाबले दुगुनी हो जाती है और करीब 4—5 मि.मि. पानी प्रतिदिन चाहिये जो बढकर 7—8 मि.मि. पानी प्रतिदिन चाहिये अतः बुवाई के 30—35 दिन पर प्रथम सिंचाई अवश्य करें। जिन खेतों में बेसल डोज नहीं दिया गया है उन खेतों में खड़ी फसल में प्रथम सिंचाई के समय डीएपी की 22 कि.ग्रा. मात्रा ड्रिल की जा सकती है। कतारों से अनावश्यक पौधों को निकालकर पौधें से पौधे की दूरी 30 से.मी. रखें। विरलीकरण सिंचाई से पूर्व या सिंचाई के बाद करें। विरलीकरण करते समय कमजोर पौधे निकालें। दूसरी बार विरलीकरण की आवश्यकता है तो 15—20 दिन बाद अवश्य दोहरायें। विरलीकरण कर पौधें की संख्या लगभग 12000 प्रति बीघा रखें।

3. **मूंगफलीः**—पहली सिंचाई बुवाई के 3—4 सप्ताह पर देवें। दूसरी सिंचाई आवश्यक है तो वर्षा पूर्व देवें। सिंचाई के पानी की गहराई 55—60 मि.मि. अवश्य रखें।फसल को खरपतवार रहित रखें सिंचाई के बाद या वर्षा होने के बाद 30—40 दिन की अवस्था पर गुड़ाई करें, जिससे गांठदार घास नष्ट किया जा सके। फूल आने के बाद गुड़ाई न करें।बुआई के समय जिप्सम नहीं दिया गया है तो तन्तु बनने से पूर्व 60 कि.ग्रा. प्रति बीघे के हिसाब से खड़ी फसल में दी जा सकती है।मूंगफली की किस्म टी.जी.—37 ए की बुवाई जून के अन्तिम सप्ताह में करें। सस्य कियाएं पूर्व में बताई अनुसार होंगी।

4. **चारे की फसलेंः**—आवश्यकतानुसार सिंचाई करें, सप्ताह में एक बार सिंचाई देना आवश्यक है अधिक गर्मी में 5—6 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करना लाभदायक हैं।

5. **बाजराः**—बीज दर : 1 कि.ग्रा. प्रति बीघा।बुवाई का समय : जून माह में बुवाई के अनुकूल वर्षा होने पर करें। इसका उपयुक्त समय मध्य जून से जुलाई का द्वितीय सप्ताह रहता है । बाजरा की बुवाई 45—60 से.मी. पर कतारों में करें। **उपयुक्त किस्में**: एच.एच.बी.—67 (उन्नत), एच.एच.बी.—226, जी.एच.बी.—538 एवं आई.सी.एम.एच. —356, आर.एच.बी.—121, आर.एच.बी.—177, एम.पी.एम.एच. 17। खाद एवं उर्वरक : सिंचित क्षेत्र में अधिक उपज लेने के लिये 23 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 8 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति बीघा की आवश्यकता होती हैं। 200 मि.मि. से कम वर्षा वाले क्षेत्र में 10 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति बीघा बुवाई के समय देवे। मिट्टी परिक्षण के आधार पर फास्फोरस देवें।

6. **मोठः**—बीज दर : 3 — 4 कि.ग्रा. प्रति बीघा।बुवाई का समय : वर्षा आरम्भ होने पर बुवाई करें। देरी से वर्षा होने पर बुवाई 30 जुलाई तक की जा सकती हैं। बुवाई 30 से.मी. पर कतारों में करें पौधे से पौधे की दूरी 15—20 से.मी. रखें। उर्वरक : 8 कि.ग्रा. फास्फोरस 5 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति बीघा देवे। बारानी क्षेत्रों में फास्फोरस की आधी मात्रा कर देवें।**उपयुक्त किस्में**: आर.एम.ओ.—225, आर.एम.ओ.—435, आर.एम. ओ.—423, आर.एम.ओ.—40 आर.एम.ओ.—257, आर.एम.ओ.—2251।

7. **ग्वारः**—बुवाई का समय : जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई का प्रथम पखवाड़ा। बीज की मात्रा : सिंचित क्षेत्र में 6 कि.ग्रा. तथा बारानी क्षेत्रों में 4 कि.ग्रा. बीज प्रति बीघा बोएं। ग्वार की बुवाई 30 से.मी. पर कतारों में करें। **खाद एवं उर्वरकः** 0.6 टन वर्मी कम्पोस्ट अन्तिम जुताई के समय कतार में दें। एक बीघा क्षेत्र के लिए 5 किलोग्राम नत्रजन + 8 किलोग्राम फास्फोरस देवे इसके लिये 11 कि.ग्रा. यूरिया 50 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफॉस्फेट या 18 कि.ग्रा. डी.ए.पी. एवं 4 कि.ग्रा. यूरिया प्रति बीघा देवें।**उपयुक्त किस्में**:एच.जी.—75,आर.जी.सी. —936,आर.जी.सी.—197, आर.जी.सी.—986, आर.जी.सी.—1017 एवं आर.जी.सी.—1003, आर.जी.सी. 1066, आर.जी.सी. 1033 एवं 1055।

8. **मूंगः** बुवाई का समय जून का द्वितीय पखवाडा है। **उर्वरक** : 8कि.ग्रा. फास्फोरस 5 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति बीघा बुवाई के समय देवे। **उपयुक्त किस्में**: एस एम एल—668, एमयूएम—2 , आर एम जी —62 , आर एम जी —268 एवं के—851, एमएच—421।

पौध व्याधि :

बाजराः—माह जून में मानसून की प्रथम वर्षा के पश्चात बुआई शुरु होती है। गुन्दिया या चेपा अरगट रोग से फसल को बचाने के लिये बीज को नमक के 20 प्रतिशत घोल (1 कि.ग्रा. नमक व पांच लीटर पानी) में पांच मिनट तक डुबो कर हिलायें। तैरते हुए हल्के बीज व कचरे को निकालें। शेष बचे हुये बीजों को साफ पानी से धोकर अच्छी तरह सुखा लेवे। तत्पश्चात् थारइम नामक दवा तीन ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से बीजों को उपचारित करके ही बुवाई करें। फसल चक्र अपनावें, लगातार उसी खेत में बाजरे की फसल नहीं लेवे। बाजरा में अरगट रोग (क्लेविसेप्स फ्यूजीफार्मिस) तथा मृदूरोमिल (तुलासिता) या हरित बाली रोग (स्कलेरोस्पोरा ग्रेमिनिकोला) नामक कवकों से लगते हैं। अतः बुआई से पूर्व बीजोपचार एप्रोन एस.डी.—35, 6 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से करें एवं रोग रोधी पौध—किस्मों का

चुनाव करें।

रोग रोधी किस्में :—आर.सी.बी.—2 तुलासिता, कण्डुआ व रोली रोग की प्रतिरोधी, राज — 171 व एच.एच.बी.—60 डाउनी मिल्डयू रोग रोधी। राज. बाजरा चरी—2 (जोबनेर) चरी हेतु उपयुक्त।

नरमा एवं कपास :—जीवाणु अंगमारी रोग (ब्लेक आर्म रोग) **लक्षणः**— सर्वप्रथम बीजपत्रों की निचली सतह पर छोटे—छोटे जलीय धब्बे प्रकट होते हैं। ये धब्बे धीरे—धीरे बढ़कर अनियमित आकार के धब्बे बनाकर बीजपत्रों को सूखकर नष्ट कर देते हैं। धब्बों का रंग भूरे से काला हो जाता है। बीजपत्रों को रोग ग्रस्त करने के बाद यह तने को ग्रस्त करता हुआ पौधें की वर्धन—शिखा तक पहुँच जाता है। जिससे पौधे की मृत्यु हो जाती है। उग्र संक्रमण से तने पर गहरी काली दरारें पड़ जाती है एवं शाखाओं का रंग काला हो जाता है। **रोकथामः**—इस रोग की रोकथाम के लिये 80 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन व एक कि.ग्रा. कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।**लीफ कर्ल वाइरस रोगः**—यह रोग पत्तियों पर दिखाई देता है। रोग रोधी पत्तियॉ भीतर की तरफ मुड़कर अधोमुखाकर प्याले का रुप ले लेती है। रोग की उग्रता के कारण शिरायें छोटी एवं मोटी हो जाती है। रोगी पौधे छोटे रह जाते हैं। नई निकलने वाली पत्तियां भी मुड़ जाती हैं व फूल भी कम लगते हैं।**रोगजनकः**—यह रोग जैमिनी वायरस द्वारा होता है। सफेद मक्खी इस रोग को फैलाने का कार्य करता है। रोगी पौधे से संक्रमित रस चूसकर स्वस्थ पौधे पर छोड़ता है। **रोकथामः**— रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही मेटासिस्टॉक्स 0.04 प्रतिशत का छिड़काव करें तथा 15—20 दिन के अन्तराल पर दोहरावें। **किस्म** : आर.एस.—875 — लीफ कर्ल वायरस के प्रति अवरोधक है। गंगानगर से विकसित इस किस्म की उपज 20—21 क्विंटल है। देशी कपास आर.जी.—8।

मूंगफलीः—टिक्का रोग :—इस रोग से फसल के पौधों पर गोल मटियाले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। जिन खेतों में रोग का प्रकोप शुरु हो केवल वहीं पर मेन्कोजेब का 2 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें एवं 10—15 दिन के अन्तराल पर दोहरावें। **शिखर विगलनः**—इस रोग के कारण पौधा अचानक मुरझाकर मर जाता है। मुरझायें हुये पौधे को उखाड़ कर देखने पर तना जहां से भूमि से बाहर निकलता है उस जगह पर काला पड़ जाता है तथा जड़े भी काली पड़ जाती है। इस रोग के नियंत्रण के लिए बीजाई से पूर्व टेबुकोनाजोल 2 % DS 1.5 ग्राम या कार्बोक्सिन 35 % + थाइरम 2 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए। बीजाई से पूर्व ट्राइकोडर्मा हरजिएनम 1 किलोग्राम 12 से 15 किलोग्राम गोबर की खाद के साथ मिलाकर भूमि उपचार करना चाहिए। रोग दिखाई पड़ते ही सिंचाई के साथ कार्बेडेजिम 2 ग्राम/लीटर पानी के हिसाब से पानी के साथ देवे अथवा कार्बेडेजिम दाना 3 किलो/बीघा के हिसाब से भूर कर फव्वारा चलावें।

मूँग व मोठ :—जून के अन्तिम सप्ताह में बोये जाने वाले बीजों को 3 ग्राम केप्टान प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। उन्नत किस्में आर.एम.ओ.—40, आर.एम.ओ.—257, आर.एम.ओ.—2251, आर.एम.ओ.—435 की बुवाई ही करावें। ये किस्में विषाणु रोग रोधी हैं।

ग्वारः—जड़ गलन रोग — इस रेाग के कारण पौधें की जड़े काली पड़ जाती हैं तथा पौध छोटी अवस्थ में ही मर जाता है। रोकथाम हेतु बुआई से पूर्व बीजों को केप्टान या टोपसीन एम—2 ग्राम एक किलो बीज की दर से उपचारित करें।**अंगमारी एवं झूलसा रोग** की रोकथाम हेतु बुआई से पूर्व प्रति कि.ग्रा. बीज को 250 पी.पी.एम. एग्रीमाईसीन या स्टेप्टोसाइक्लिन के घोल में 2 धण्टे भिगोकर उपचारित करें। लक्षण दिखाई पड़ते ही 80 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन व एक किलो कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 400 ली. पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

उन्नत किस्मेंः— आर.जी.सी.—936, आर.जी.सी.—986

तिलः—बीजोपचार— बुआई से पूर्व बीज को 3 ग्राम थाइरम अथवा कैप्टान 3 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित करें।**उन्नत किसमें**— आर.टी.—103, आर.टी.— 125, आर.टी.— 46।

कीट विज्ञानः—

नरमा कपासः—नाशी कीट प्रबन्ध में फसल निरिक्षण करना बहुत महत्वपूर्ण है। नाशी कीटों की देख—भाल सप्ताह के अन्तराल से 10—12 पौधे प्रति बीघा लेकर करना चाहिए। 1. कपास व नरमा के खेत के चारों ओर दो लाइने मक्का, ज्वार बोने से कपास की फसल में मित्र कीटों की मात्रा में वृद्धि होती है। 2. जून माह में देशी कपास में चितकवरी व गुलाबी सूंडीयों का प्रकोप हो सकता है। फसल में प्रकोप हो गया हो तो निम्न में से किसी एक कीटनाशी का छिड़काव करें। साइपरमेथ्रिन 10 ई.सी. 125 मि.ली. प्रति बीघा, साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. 50 मि.ली. प्रति बीघा, फेनवलरेट 20 ई.सी. 100 मि.ली. प्रति बीघा, डेकोमेथ्रिन 2.8 ई.सी. 100 मि.ली. प्रति बीघा। ध्यान रहे इन कीटनाशियों का अगस्त माह बाद छिड़काव नहीं करना चहिए क्योंकि इसके पश्चात संश्लेषित पाइरेथ्राइड के प्रति प्रतिरोधकता अधिक पाई गई है। प्रतिरोधकता की समस्या को कम करने के लिए तिल के तेल को एक लीटर प्रति हैक्टर की दर से संश्लेषित पाइरेथ्राइड में मिला देना चाहिए।

मूंगफलीः—खड़ी फसल में सफेद लट एवं दीमक का प्रकोप होने की दशा में सिंचाई के साथ क्लोरोपाइरिफोस एक लीटर या इमीडाकलोप्रिड 300 मि.ली प्रति बीघा की दर से प्रयोग करें। जहाँ मात्र दीमक का ही प्रकोप हो तो क्लोरोपाइरिफोस दवा का 600 मि.ली. प्रति बीघा रखें।

निदेशक की कलम से .....

खेती में जल बचत का महत्व समझें किसान!

सुभाष चन्द्र
निदेशक प्रसार शिक्षा

खेती में जल का महत्व सर्व विदित है। घटता हुआ नहरी पानी, गहराता हुआ भू–जल स्तर और समय–समय पर हो रही नहर बन्दी के कारण किसानों की खड़ी फसलों को बचाने के लिए आज जरुरी है कि हर किसान खेती में जल बचत के महत्व को ना केवल समझे अपितु उन्हें अंगीकार भी करे। आज फव्वारा सिंचाई, बूंद–बूंद सिंचाई, मिनी स्प्रिंकलर, माइक्रो स्प्रिंक्लर, रेनगन जैसी उन्नत सिंचाई विधियाँ प्रचलित हैं, जिनसे सतही जल बहाव विधि की तुलना में 30 से 40 प्रतिशत तक जल की बचत होती है।

इन सभी सूक्ष्म सिंचाई जल विधियों में जल वहन दक्षता शत् प्रतिशत तक प्राप्त की जा सकती है, अर्थात् जल स्त्रोत से खेत में बिजाई तक प्रारम्भिक सिरे तक जल हानि को रोका जा सकता है। यह पानी को पाइप लाइनों में वहन करने से सम्भव हुआ है। केवल सिंचाई पाइप लाइन योजना को ही अपनाकर खालों में होने वाली जल हानि को रोका जा सकता है। जल को पौधों तक वितरित करने में सबसे ज्यादा दक्षता बूंद–बूंद सिंचाई में प्राप्त होती है, जहाँ जल वितरण दक्षता 90 से 95 प्रतिशत तक प्राप्त करना सम्भव है। राजस्थान के पश्चिमी भाग में तेज हवाओं के कारण फव्वारा सिंचाई में जल वितरण में समरुपता प्रभावित होती है, परन्तु बूंद–बूंद सिंचाई में तेज हवाओं का प्रभाव नहीं होता है तथा केवल पौधों की जड़ क्षेत्र में ही सिंचाई देने से सतही वाष्पन तो कम होता ही है, खरपतवार भी कम उगते हैं। पानी यदि थोड़ा खारा है तो ड्रिप सिंचाई ही एक विधि है, जिससे पौधों को नुकसान कम होता है, कारण कि लवण नमी के बाहरी किनारे पर रहते हैं तथा पौधों का जड़ क्षेत्र प्रभावित नहीं रहता। फव्वारा सिंचाई में सड़क किनारे फैल रहे फव्वारा जल को व्यर्थ होने से रोकने के लिए आजकल 'पार्ट सर्कल' फव्वारों का उपयोग बढ़ रहा है जो पानी को एक तरफा ही लगाने में सक्षम है। इसका प्रयोग कर आधा जल व्यर्थ होने से बचाया जा सकता है।

आओ मिलकर करें ये काम

वृक्ष लगाएं

जल की हर एक बूंद बचाएं

कोरोना को फैलने से रोकें

टीकाकरण कराएं

मास्क पहनें

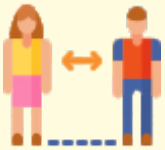

सामाजिक दूरी बना कर रखें

हाथों को साबुन से बार-बार धोएं

मार्गदर्शक : डॉ. सुभाष चन्द्र, निदेशक प्रसार शिक्षा, **सम्पादक** : डॉ. (श्रीमती) सीमा त्यागी, एटिक प्रभारी **सहयोग** : सतीश सोनी, सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर